तेरापंथ और अनुशासन

□ मुनि श्री सुमेरमल "लाडनूं"
(युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी के शिष्य)

तेरापन्थ शब्द अन्य धर्म सम्प्रदायों के लिए अनुशासन का प्रतीक बन गया है। तेरापन्थ नाम दिमाग में आते ही आचार्य केन्द्रित सर्वात्मना समर्पित संस्थान का ढाँचा सामने आ जाता है। सचमुच तेरापन्थ का मतलब ही है—अनुशासित धर्मसंघ।

आचार्य भिक्षु की यह महान् देन है। उन्होंने अपने धर्म-संघ में प्रारम्भ से अनुशासन को स्थान दिया था। वे देख चुके थे—अन्य धर्म सम्प्रदायों की अनुशासनहीनता और उसके दुष्परिणाम। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी—बिना अनुशासन के सामूहिक व्यवस्था ठीक नहीं बैठ सकती और अव्यवस्था में कभी सम्यक्‌साधना सध नहीं सकती।

मनमानी करने वाला उनकी दृष्टि में साधना नहीं कर सकता। जब तक मन पर नियन्त्रण नहीं होता, तब तक साधना में साधक स्थिर नहीं हो सकता। मनमानी रोकने के लिए ही उन्होंने कुछ अनुशासनात्मक मर्यादाएँ बाँधी। संवत् १८३२ में उन्होंने इस ओर अपनी लेखनी उठाई। प्रथम लेखपत्र में ही उन्होंने कई मर्यादाओं का निर्माण किया उनमें प्रमुख पाँच मर्यादाएँ हैं—

१. सर्व साधु-साध्वियाँ एक आचार्य की आज्ञा में रहें।
२. विहार-चातुर्मास आचार्य की आज्ञा से करें।
३. अपना शिष्य-शिष्याएँ न बनायें।
४. आचार्य श्री योग्य व्यक्ति को दीक्षित करें, दीक्षित करने पर भी कोई अयोग्य निकले तो उसे गण से अलग कर दें।
५. आचार्य अपने शिष्य को उत्तराधिकारी चुने, उसे सब साधु-साध्वियाँ सहर्ष स्वीकार करें।

इन मर्यादाओं ने व्यवस्था की दृष्टि से साधक को सर्वथा निश्चिन्त बना दिया है। कहाँ जाना? कहाँ रहना? किसके साथ जाना? या किसे ले जाना? ये सब आचार्य केन्द्रित व्यवस्थाएँ हैं। हर साधक को आचार्य के निर्देशानुसार चलना होता है, फिर किसी प्रकार की कठिनाई नहीं।

मर्यादाओं का औचित्य

कहने को यह भी कहा जा सकता है, इन मर्यादाओं में जीवन बँध जाता है; व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं रहता, हर दृष्टि से वह पराधीन बन जाता है। फिर साधु को मर्यादा की क्या जरूरत? उसे तो मुक्त-जीवन जीना चाहिए।

साधु साधक है, सिद्ध नहीं है। सिद्धों के मर्यादा नहीं होती, सर्वज्ञों के मर्यादा नहीं होती। जब तक छद्मस्थता है, तब तक जागरूकता अपेक्षित है। जागरूक रहने के लिए मर्यादाएँ प्रहरी का काम करती हैं। वह बहुत जरूरी हैं।

मर्यादा में चलने का मतलब पराधीन बनना नहीं, अपने जीवन की व्यावहारिक व्यवस्था का भार अगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी को सौंपकर निश्चिन्त भाव से साधना संलग्न बनता है, तो वह पराधीन नहीं होता है। अपने जुम्मे का कार्य किया और निश्चिन्त हुआ। दूसरों की चिन्ता तो नहीं, उसे अपनी चिन्ता भी नहीं। सारा दायित्व आचार्य पर सौंपकर साधक सचमुच हल्का हो जाता है, अतः मर्यादा में रहना, अनुशासन में रहना, आचार्य समर्पित होना, पराधीन बनना नहीं, अपने आपको निश्चिन्त बनाकर साधना संलग्न होने का मार्ग प्रशस्त करना होता है।

तेरापन्थ में केवल मर्यादा का निर्माण ही नहीं हुआ है, उनके पालन के प्रति पूरी सजगता बरती जाती है। जहाँ मर्यादा का भंग हुआ, वहीं अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई। एक बार आचार्य भिक्षु ने चंडावल में एक साथ पाँच साध्वियों को मर्यादा से अधिक वस्त्र रखने के कारण संघ से निष्कासित कर दिया था। तेरापन्थ में व्यक्ति का सवाल नहीं, मर्यादा का सवाल है, साधना का सवाल है। उस समय साध्वियों की संख्या बहुत कम थी फिर भी आचार्य भिक्षु ने चिन्ता नहीं की।

इसी प्रकार चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जाचार्य ने एक साधु को संघ से इसलिये बहिष्कृत कर दिया कि संघ की मर्यादा के प्रति वह लापरवाह था। उस मुनि ने एक बार बिना आज्ञा लिये सुई वापिस भुला दी थी। युवाचार्य श्री मघवामणि के पूछने पर कहा—सुई ही तो थी, क्या खास बात थी जो आज्ञा लेना पड़े। यों लापरवाही से उत्तर दिया। जयाचार्य प्रतिक्रमण में थे, प्रतिक्रमण के बाद उसे बुलाकर फिर पूछा तो उसी लापरवाही से उसने वहाँ उत्तर दिया। जयाचार्य ने कहा—प्रश्न सुई का नहीं है। प्रश्न है अनुशासन का, प्रश्न है व्यवस्था का। उसके प्रति लापरवाही बरतने वाला संघ में कैसे रह सकता है? उस मुनि ने फिर भी अपनी लापरवाही के प्रति कोई अनुताप नहीं किया। जयाचार्य ने उसे अनुशासनहीनता के कारण संघ से बहिष्कृत कर दिया था। तेरापन्थ की यह नीति रही है। यहाँ रुग्ण को स्थान है, प्रकृति से कठोर व्यक्ति को स्थान है किन्तु अनुशासनहीन को यहाँ स्थान नहीं है। आचार्य भिक्षु से लेकर अब तक यही क्रम अविच्छिन्न रूप से चल रहा है।

तेरापन्थ की आचार्य परम्परा ही केवल अनुशासन के प्रति सजग नहीं है, साधु-साध्वियों की परम्परा भी इस ओर जागरूक है। किसी साध्वी को अनुशासनहीन होने ही नहीं देते, सब जानते हैं अनुशासनहीन होने का मतलब है सबकी दृष्टि में गिरना और अन्त में संघ से भी छूटना।

तेरापन्थ के श्रावक-श्राविकाएँ भी संघीय अनुशासन के प्रति पूर्णतः जागरूक हैं। अनुशासनहीनता के विरुद्ध कठोर से कठोर कदम उठाते भी नहीं सकुचाते।

मेवाड़ में देवरिया ग्राम के निवासी श्री जुहारमलजी के जीवन का भी ऐसा ही एक प्रसंग है—श्रावक जुहारमल संघनिष्ठ परम भक्त थे। एक बार वहाँ मुनि नथराजजी आये, जिनका चातुर्मास अन्यत्र फरमाया हुआ था। वे सन्त वहाँ जाना नहीं चाहते थे, वहीं देवरिया में ही चातुर्मास बिताना चाहते थे। किन्तु आचार्यश्री द्वारा उनका चातुर्मास घोषित दूसरे स्थान पर था।

अतः श्रावकों में कुछ परस्पर चर्चा होने लगी, सन्तों का मन विहार का कम है, बातचीत भी चलाते हैं तो कहते हैं घुटनों में दर्द है। ऐसा दर्द लगता नहीं है, शौच-गोचरी के लिये इधर-उधर जाते ही हैं तो विहार न हो ऐसा नहीं लगता। आखिर लोगों ने विहार के लिये सन्तों से कहा। सन्तों के दर्द बताने पर लोगों ने स्पष्ट कहा—महाराज! चातुर्मास आपका वहां फरमाया हुआ है अतः वहीं करना पड़ेगा। घुटनों का दर्द इतना नहीं है, पंचमी (शौच) के लिये आप बाहर पधारते ही हैं, ऐसे ही धीमे-धीमे विहार कर लीजिये। गुरु-आज्ञा है उसे तो पालना ही होगा।

श्रावकों की स्पष्ट बातें सुनकर सन्तों ने विहार किया, किन्तु पैरों को टेढ़ा रखते हुए बहुत कठिनाई से चलने लगे। सोचा होगा—शायद अब भी श्रावक देवरिया चातुर्मास के लिये कह दें तो वापिस चले जायें। पहुँचाने के लिए आये हुए लोगों को उनका चलना अस्वाभाविक लगा। तभी भीड़ में से श्रावक जुहारमलजी आगे आये और बोले—महाराज! हमारे ग्राम में इस वर्ष चातुर्मास किसी साधु-सतियों का नहीं है, प्रार्थना भी काफी की थी, किन्तु पूज्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुदेव के वेंत न होने से चातुर्मास नहीं हुआ। किन्तु हम आपको यहाँ नहीं रख सकते। आपका चातुर्मास जहाँ फरमाया हुआ है, वहीं पर आपको करना होगा। सन्तों ने घुटने की ओर इशारा करते हुए कहा—दर्द है कैसे चलूं? जुहारमलजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—सुनो महाराज! घुटने का दर्द तो बहाना मात्र है, वहाँ जाने की आपकी इच्छा नहीं है, ऐसा हमें लगता है। अपने संघ में ऐसा नहीं चल सकता। यहाँ तो गुरु-आज्ञा प्रधान है। अनुशासन प्रधान है। अतः या तो अच्छी तरह से विहार कर निर्णीत स्थान पधार जाइये, अगर ऐसा नहीं करना चाहते हो तो पुस्तक पात्र आदि संघ के हैं उन्हें तो यहाँ रख दीजिए फिर जहाँ मर्जी हो वहाँ जाइए, हमें कोई एतराज नहीं। यह सुनते वहाँ से सन्त ऐसे चले मानो घुटने में दर्द था ही नहीं।

इस प्रकार तेरापन्थ के इतिहास के हर पृष्ठ पर हमें अनुशासन की छाप मिलेगी। साधु-साध्वियों के साथ श्रावक-श्राविकाएँ भी संघीय मर्यादा के प्रति, अनुशासन के प्रति सजग रहे थे और आज भी सजग हैं, अनुशासन भंग करने वालों को यहाँ सब ओर से टोका जाता है। चाहे बहुश्रुत भी क्यों न हो?

यही कारण है दो सौ वर्ष बीत जाने पर भी धर्मसंघ का अनुशासन वैसा का वैसा कायम है। जब तक अनुशासन कायम रहेगा, तब तक तेरापन्थ प्रगति शिखर पर चढ़ता रहेगा। जन-जन का कल्याण करता रहेगा।

□

न धावने काऽपि विशेषताऽऽस्ते,
दिशावबोधो यदि नास्ति सम्यक्।
निर्णीय गन्तव्यपथं यियासोः
शनैः शनैर्यानमपि प्रशस्तः॥

—वर्द्धमान शिक्षा सप्तशती
(श्री चन्दनमुनि रचित)

दिशा का सम्यक् बोध न हो और मनुष्य दौड़ता ही जाय तो उसमें क्या विशेषता है, उससे कोई साध्य सिद्ध न हो सकेगा। गन्तव्य पथ और प्राप्तव्य ध्येय का सम्यक् रूप से निर्णय करके धीरे-धीरे भी गमन करे तो लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org